अध्याय – 13
पादप वृद्धि
(Plant Growth)

वृद्धि सभी सजीवों का लाक्षणिक गुण है तथा यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त जारी रहती है। यह एक जटिल कार्यिकीय प्रक्रिया है जो दूसरी अनेक कार्यिकीय प्रक्रियाओं पर निर्भर रहती है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप सजीवों के आकार एवं परिमाप में स्थायी परिवर्तन परिलक्षित होते हैं।

वृद्धि अनेक उपापचयी क्रियाओं के परिणाम स्वरूप होती है जिससे विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों का संशोधन तथा जीवद्रव्य का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त वृद्धि के लिए कुछ दूसरे कारक जैसे हार्मोन आदि की आवश्यकता भी होती है।

परिभाषा – *''सजीवों के आकार तथा आयतन में स्थायी तथा अनुत्क्रमणीय परिवर्तन जिसके फलस्वरूप उनके शुष्क भार में बढ़ोतरी होती है, वृद्धि कहलाता है।''*

वृद्धि के दौरान आयतन तथा शुष्क भार दोनों में बढ़ोतरी होती है। आकार में बढ़ोतरी हमेशा वृद्धि के परिणाम स्वरूप ही हों, यह आवश्यक नहीं है। उदाहरण के तौर पर शुष्क बीज जल अवशोषित कर फूल जाते है। परन्तु सूखने पर पुन: उनका आकार कम हो जाता है तथा उनके शुष्क भार में भी परिवर्तन नहीं होता है।

पादप वृद्धि स्थल
(Plant Growth Sites)

निम्न श्रेणी के पादपों (जैसे शैवाल) में वृद्धि उनके पूर्ण शरीर में होती है जबकि उच्च श्रेणी के पादपों में वृद्धि कुछ विशेष भागों में सीमित होती है। इन स्थलों पर पाया जाने वाला वृद्धिकारी ऊतक **विभज्योतक** (Meristem) कहलाता है। इसकी कोशिकाओं में विभाजन एवं निरन्तरता की क्षमता होती है।

स्थिति के आधार पर विभज्योतक तीन प्रकार के होते हैं –

(1) शीर्षस्थ विभज्योतक (Apical meristem)

(2) अन्तर्वेशी विभज्योतक (Intercalary meristem)

(3) पार्श्व विभज्योतक (Lateral meristem)

(1) शीर्ष विभज्योतक – यह ऊतक प्ररोह एवं मूल के शीर्ष पर उपस्थित होता है जिसमें कोशिका विभाजन से नई कोशिकाएँ बनती है जो विवर्धन तथा विभेदन (Elongation and differentiation) के द्वारा स्थायी ऊतकों का निर्माण करती है। इसके परिणामस्वरूप मुख्यत: पौधों की लम्बाई तथा सीमित मात्रा में मोटाई में वृद्धि होती है। यह प्राथमिक वृद्धि (Primary growth) कहलाती है।

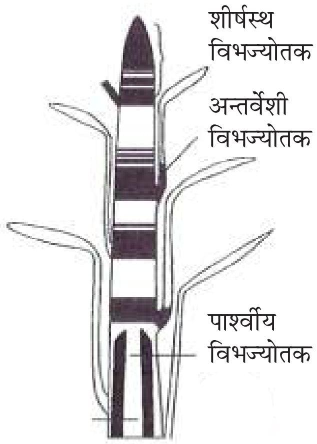

चित्र 13.1 स्थिति के आधार पर विभज्योतक ऊतकों के प्रकार

(2) अन्तर्वेशी विभज्योतक – यह सदैव स्तम्भ की पर्वसन्धि के ऊपर पाया जाता है एवं इस ऊतक की क्रियाशीलता से पर्व में वृद्धि होती है जिससे तने की लम्बाई बढ़ती है। उदा. घास, गन्ना, बांस आदि।

(3) पार्श्वीय विभज्योतक – प्राय: नग्नबीजियों व द्विबीजपत्रियों में इसकी सक्रियता से तने एवं जड़ की **माटाई में वृद्धि** होती है। संवहन एधा एवं कॉर्क एधा पार्श्व विभज्योतक के उदाहरण हैं। इससे होने वाली वृद्धि **द्वितीयक वृद्धि** कहलाती है। यह वृद्धि अधिकतर बहुवर्षी पादपों में पाई जाती है।

वृद्धि की प्रावस्थाएं

(Phases of growth)

विभाज्योतक की कोशिकाएं समसूत्री विभाजन द्वारा नवीन कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। इन कोशिकाओं में विवर्धन एवं विभेदन के द्वारा स्थायी ऊतक बनते हैं। वृद्धि को तीन प्रावस्थाओं में बाँटा जा सकता है –

1. कोशिका निर्माण प्रावस्था 2. कोशिका दीर्घीकरण प्रावस्था
3. कोशिका विभेदन प्रावस्था

(1) कोशिका निर्माण या कोशिका विभाजन प्रावस्था

(Phase of cell formation or phase of cell division)

यह वृद्धि का प्रारम्भिक चरण होता है जिसमें कोशिकाओं की संख्यात्मक वृद्धि होती है। इस प्रावस्था में विभज्योतक कोशिकाएं निरन्तर समसूत्री विभाजन द्वारा विभाजित होती रहती हैं। इन विभाजनक्षम कोशिकाओं का केन्द्रक बड़ा, जीवद्रव्य सघन तथा कोशिका भित्ति पतली होती है। इस प्रावस्था को पूर्व निर्माण प्रावस्था भी कहते है, क्योंकि पादप अपने आपको तीव्र वृद्धि के लिए तैयार करता है।

(2) कोशिका दीर्घीकरण प्रावस्था

(Phase of cell elongation)

यह वृद्धि की द्वितीय प्रावस्था है। इस प्रावस्था में विभज्योतक में विभाजन से निर्मित कोशिकाएं आकार में अनुत्क्रमणीय वृद्धि करती हैं। इस अवस्था में अनेक छोटी – छोटी रिक्तिकाएं बन जाती हैं जिनमें जल तथा घुलित पदार्थ एकत्रित होते रहते हैं। ये छोटी – छोटी रिक्तिकाएं मिलकर बड़ी केन्द्रीय रिक्तिका का निर्माण करती हैं। इस प्रावस्था में कोशिकाओं में केन्द्रक तथा कोशिका द्रव्य परिधीय हिस्से में उपस्थित रहते है। इस दौरान पादप के शुष्कभार में वृद्धि होती है।

(3) कोशिका विभेदन प्रावस्था

(Phase of cell differentiation)

इस प्रावस्था में कोशिकाएं विभेदित होकर स्थायी ऊतकों में परिवर्तित हो जाती है। कोशिकाओं की आकृति व आकार में अत्यधिक परिवर्तन होता है जिसके फलस्वरूप कोशिकाएं कार्यानुरूप विभेदित हो जाती हैं। यांत्रिक ऊतकों की कोशिका भित्ति मोटी हो जाती है। जाइलम व फ्लोएम का विभेदन हो जाता है। कोशिकाएं अपनी कार्यिकीय व जैव रासायनिक क्रियाओं में परिवर्तन करती हैं। इन सभी परिवर्तनों के फलस्वरूप कोशिका का संरचनात्मक, कार्यिकीय व जैवरासायनिक विभेदन होता है।

वृद्धि बलगतिकी

(Growth Kinetics)

एक निश्चित समय में किसी अंग या पादप विशेष के आयतन या भार में होने वाली वृद्धि उसकी **वृद्धि दर** कहलाती है। वृद्धि दर को ज्यामितीय (रेखागणितीय) तथा अंकगणितीय रूप में व्यक्त किया जा सकता है। ज्यामितीय वृद्धि के अंतर्गत एक कोशिका से निर्मित दोनों पुत्री कोशिकाएं पुन: विभाजित होती हैं। इससे प्रत्येक विभाजन के पश्चात् बनने वाली कोशिकाओं की संख्या दुगुनी होती जाती है। जैसे – $1 \rightarrow 2 \rightarrow 4 \rightarrow 8 \rightarrow 16$ आदि। ज्यामितीय वृद्धि युग्मनज (Zygote) के प्रारम्भिक विभाजनों के दौरान देखी जा सकती है। अंकगणितीय वृद्धि के दौरान प्रत्येक विभाजन से बनने वाली दो कोशिकाओं में से एक स्थायी कोशिका में परिवर्तित हो जाती है तथा केवल एक ही आगे विभाजन करती है। इस प्रकार प्रत्येक विभाजन से केवल एक नई कोशिका की बढ़ोतरी होती है। जैसे – $1 \rightarrow 1 \rightarrow 1 \rightarrow 1 \rightarrow 1$ आदि। ऐसा विभाजन प्ररोह व मूल शीर्ष पर होता है।

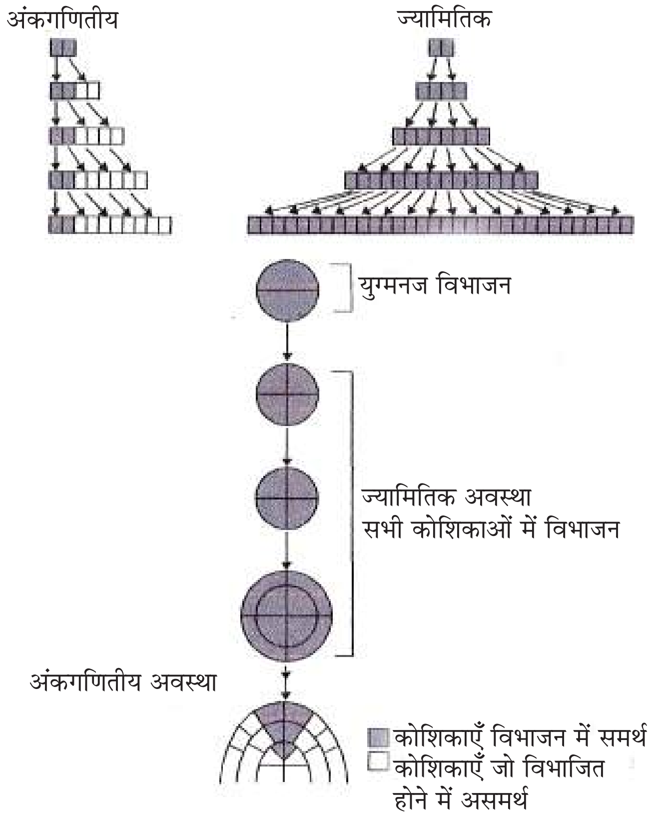

चित्र 13.2 अंक गणितीय व ज्यामितीय वृद्धि

वृद्धि की दर को प्रभावित करने वाले कारकों को समान रखते हुए यदि हम कोशिका, पादपअंग या सम्पूर्ण पादप की वृद्धि का मापन करें तो हम देखते हैं कि इसकी दर समान नहीं होती है। यदि वृद्धि दर का समय के साथ ग्राफ बनाया जाए तब, एक **S - आकृति** या **सिग्मोइड आकृति** (S - shaped or sigmoid shaped) वाला ग्राफ प्राप्त होता है। इसे **वृद्धि वक्र** (Growth curve) कहते हैं। एक सम्पूर्ण वृद्धि वक्र को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) मन्दवृद्धिकाल (Lag period) - यह वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था होती है जिसमें वृद्धि दर मन्द होती है। इस अवस्था में कोशिका में आन्तरिक परिवर्तन होते हैं एवं संचित खाद्य पदार्थों के उपयोग में आने से इसके शुष्क भार में कमी आती है। कोशिका विभाजन के फलस्वरूप नवीन कोशिकाओं का निर्माण होता है जिससे आयतन में धीरे - धीरे वृद्धि होती है।

(2) अधिकतम वृद्धिकाल (Log period) - इस प्रावस्था में तीव्र गति से अधिकतम वृद्धि होती है जो कोशिकाओं के विवर्धन के कारण होती है।

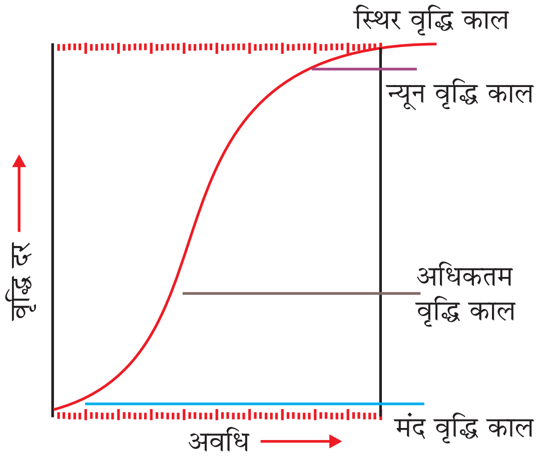

चित्र 13.3 सिग्मोइड वृद्धि चाप

(3) मंद वृद्धिकाल (Diminishing growth period or Decline period) - इस अवस्था में वृद्धिदर पुनः मन्द हो जाती है। इस काल में कोशिकाओं का परिपक्वन होता है तथा उपापचयी क्रियाएं भी धीमी पड़ने लगती है।

(4) स्थिर वृद्धिकाल (Stationary period) - इस प्रावस्था में कोशिका के पूर्ण परिपक्वन हो जाने से वृद्धि लगभग स्थिर हो जाती है।

अधिकतम वृद्धिकाल जिसके दौरान अधिकतम वृद्धि होती है, उसको **सैक्स** (Sachs, 1882) ने **समग्र वृद्धिकाल** (Grand period of growth) कहा है।

वृद्धिमापन
(Growth Measurement)

पादप में वृद्धिदर का मापन उसके अंगों (पत्ती, फूल, फल) के आकार, क्षेत्रफल अथवा भार में वृद्धि के रूप में किया जा सकता है। पादप में वृद्धि मापन निम्नलिखित रूपों में किया जा सकता है -

(1) कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि द्वारा

(2) कोशिकाओं, ऊतकों एवं अंगों के आकार में वृद्धि द्वारा

(3) शुष्क भार में वृद्धि द्वारा

(4) रेखीय नाप द्वारा

वृद्धि मापन की विभिन्न विधियाँ तथा प्रयुक्त उपकरण निम्न प्रकार हैं -

(1) सरल अथवा सीधी विधि :- यह वृद्धि मापन की सबसे सरलतम् विधि है जिसमें पादप अंग की प्रारम्भिक लम्बाई को स्केल से माप लिया जाता है। इसके पश्चात निश्चित समयावधि के उपरान्त पुनः उसकी लम्बाई का मापन कर लिया जाता है। लम्बाई में पाई गई वृद्धि उस निश्चित समय में होने वाली वृद्धि को इंगित करती है।

(2) वृद्धिमापी द्वारा (By Auxanometer) - सामान्यतः पादप की वृद्धि को रेखीय वृद्धि द्वारा ही मापा जाता है। इसके लिए वृद्धिमापी यन्त्र (Auxanometer) प्रयुक्त किया जाता है। यहाँ एक सरल चाप वृद्धिमापी का वर्णन किया गया है।

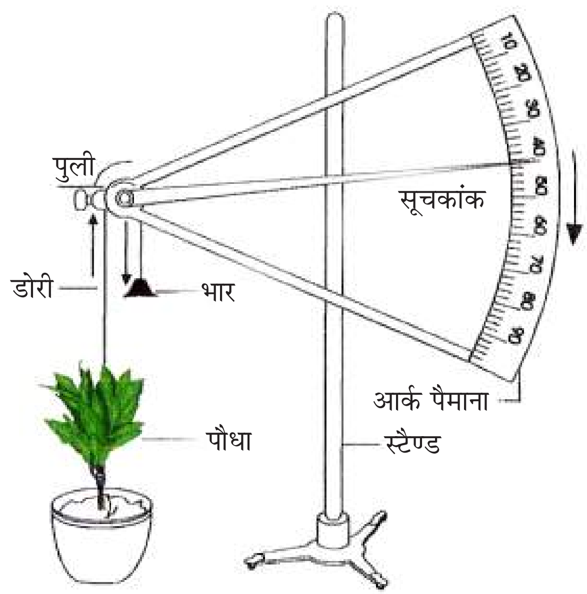

चित्र 13.4 आर्क (चाप) वृद्धिमापी

चाप वृद्धिमापी (Arc auxanometer) - इस वृद्धिमापी उपकरण के द्वारा पादप की लम्बाई में होने वाली वृद्धि को मापा जाता है।

इससें एक उर्ध्व स्टैण्ड पर छोटी घिर्री (Pulley) लगी होती है। घिर्री से एक सूचक जुड़ा हुआ होता है जो स्केल पर चलता है। वृद्धि करने वाले पादप के तने के शीर्ष पर एक धागा बांधकर उसे पुली के ऊपर ले जाकर दूसरे सिरे पर कुछ वजन बांध दिया जाता है। तना जब वृद्धि करता है तो धागे से बँधा हुआ भार धागे को नीचे की ओर खींचता है जिसके फलस्वरूप घिर्री घूमती है। चूंकि घिर्री से सूचक लगा हुआ होता है, अत: घिर्री के घूमने से सूचक स्केल पर चलता है जो लम्बाई में वृद्धि को दर्शाता है।

चाप सूचक द्वारा वृद्धि कों आवर्धित रूप में देखा जाता है तथा इसका मान घिर्री के व्यास तथा सूचक की लम्बाई पर निर्भर करता है।

वृद्धि दर को प्रभावित करने वाले कारक

(Factors Affecting Growth)

पादप वृद्धि विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित होती है ये कारक वातावरणीय एवं शरीर क्रियात्मक दोनों प्रकार के होते हैं।

शरीर क्रियात्मक कारकों में जल एवं खनिजों का अवशोषण, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन आदि सम्मिलित हैं, तथा **वातावरणीय कारकों** में मौसम और मृदा सम्बन्धी दोनों कारक आते हैं। पादप वृद्धि को प्रभाावित करने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक निम्न हैं –

(1) प्रकाश (Light) - प्रकाश वृद्धि को कई प्रकार से प्रभावित करता है, जैसे

(अ) प्रकाश की तीव्रता (Light intensity) – प्रकाश की अधिक तीव्रता वृद्धि को मन्द कर देती है। उच्च प्रकाश तीव्रता पौधों में बौनापन उत्पन करती है क्योंकि इससे तने के पर्व छोटे हो जाते है तथा पत्तियाँ भी छोटे आकार की हो जाती है।

(ब) प्रकाश की गुणवत्ता (Quality of light) - पादप में पाये जाने वाले वर्णक निश्चित तरंग दैर्ध्य वाली प्रकाश तरंगों को अवशोषित करते हैं। लाल वर्णीय प्रकाश वृद्धि के लिए सबसे उपयुक्त होता है इसके विपरीत पराबैंगनी एवं अवरक्त प्रकाश किरणें पादप वृद्धि को सीमित करती हैं।

(स) प्रकाश की अवधि (Duration of light) – प्रकाश की अवधि का कायिक एवं प्रजनन संरचनाओं की वृद्धि पर उल्लेखनीय प्रभाव होता है। पौधों में पुष्पन के लिए आवश्यक प्रकाश की एक निश्चित अवधि को **दीप्तिकाल** (Photoperiod) कहते है। आवश्यक दीप्तिकाल के अभाव में पुष्पन प्रक्रिया रूक जाती है।

2. जल (Water) :– जल की आपूर्ति का भी वृद्धि दर से सीधा सम्बन्ध होता है। पादप को उपलब्ध होने वाली जल की मात्रा पादप वृद्धि एवं उसकी आकृति को प्रभावित करती है। पादप की समस्त जैविक क्रियाएं जल पर निर्भर करती हैं जैसे अवशोषण, परासरण, वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, अंकुरण आदि।

3. तापमान (Temperature) :– तापमान भी वृद्धि को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। सामान्यत: उच्च कोटि के पौधों में 5^0C से 35^0C ताप के मध्य सामान्य वृद्धि होती है। 35^0C ताप से अधिक हो जाने पर उष्मीय प्रभाव से पौधे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं तथा 0^0C से नीचे ताप हो जाने पर जल के जमने से जीवद्रव्य निष्क्रय हो जाता है एवं कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं।

(4) ऑक्सीजन आपूर्ति (Oxygen supply) :– ऑक्सीजन की मात्रा पौधों में वृद्धि बढ़ाती है क्योंकि यह वृद्धि सहित पौधों की अन्य जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक श्वसन में सहायता करके विभव ऊर्जा को गतिज ऊर्जा में परिवर्तित करने में सहायता करती है।

(5) खनिज लवण (Mineral salts) :– खजिन लवणों के अभाव में पादपों में त्रुटिजन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे पादप वृद्धि मंद पड़ जाती है

(6) पादप हार्मोन (Plant hormones) :– पौधों की वृद्धि अत्यधिक सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित कुछ कार्बनिक यौगिकों द्वारा नियन्त्रित होती है। इन यौगिकों को पादप हर्मोन या वृद्धि कारक पदार्थ कहते है। इनकी कमी से पादप वृद्धि रूक जाती है।

वृद्धि नियामक पदार्थ

(Growth regulatory substances)

कुछ रासायनिक पदार्थ जिनका पौधों में अल्प मात्रा में संश्लेषण होता है, वृद्धि को अत्यन्त प्रभावी तरीके से नियन्त्रित करते हैं, **वृद्धि नियन्त्रक** या **वृद्धि नियामक पदार्थ** कहलाते है। पादपों में सर्वप्रथम वृद्धि हार्मोन का सुझाव जर्मन वैज्ञानिक **जूलियस वॉन सैक्स** (J. Sachs, 1882) ने प्रस्तुत किया था। हार्मोन शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **स्टरलिंग** (Sterling, 1902) ने किया तथा **थिमैन** (Thimann, 1948) ने पादप हार्मोन के लिए **फाइटोहार्मोन** (Phytohormone) शब्द का प्रयोग किया था। उनके अनुसार *''पादप हार्मोन वे जटिल कार्बनिक पदार्थ हैं जो पौधों में प्राकृतिक रूप से एक भाग में निर्मित होकर अन्य भागों में स्थानान्तरित हो जाते हैं जहाँ इनकी अति सूक्ष्म मात्रा वृद्धि को प्रभावित करती है।''* सामान्यत: ये पदार्थ पादप की कार्यिकीय गतिविधियों (Physiological activities) को प्रभावित व नियंत्रित करते हैं।

हार्मोन वर्गीकरण

(Classification of Hormones)

पादप हार्मोन को दो प्रमुख समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(1) वृद्धि प्रवर्धक हार्मोन (Growth promoting hormones) :– वे हार्मोन्स जो वृद्धि को प्रेरित करते है अथवा वृद्धि दर को बढ़ाते हैं **वृद्धि प्रवर्धक हार्मोन** कहलाते हैं।

इस वर्ग में ऑक्सिन, जिब्रेलिन, साइटोकाइनिन तथा इथाइलिन

को सम्मिलित किया गया है।

(2) वृद्धि अवरोधक (Growth inhibitory hormones) – वे हार्मोन्स जो वृद्धि की दर को कम कर देते हैं, **वृद्धि अवरोधक** कहलाते हैं। इस वर्ग में **एब्सिसिक अम्ल** को सम्मिलित किया गया है।

वृद्धि प्रवर्धक हार्मोन्स (Growth Promoting Hormones) – वे हार्मोन्स जो वृद्धि की दर को बढ़ाते है वृद्धि प्रवर्धक कहलाते है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित हार्मोन्स सम्मिलित है :-

I ऑक्सिन्स, II जिब्रेलिन्स III साइटोकाइनिन्स, IV एथिलीन (इथाइलिन)

I. ऑक्सिन
(Auxins)

ऑक्सिन शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द *Auxein* से हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है "to grow" अर्थात् वृद्धि करना। ऑक्सिन ऐसा पादप हार्मोन समूह है जिसे सर्वप्रथम खोजा गया था तथा यह पौधों में प्ररोह की कोशिकाओं में दीर्घीकरण को प्रेरित करते है। इसे सबसे पहले मानव मूत्र से पृथक किया गया था। **इण्डोल ऐसीटिक अम्ल** व इसके समान गुण वाले सभी प्राकृतिक तथा कृत्रिम संश्लेषित पदार्थ ऑक्सिन कहलाते हैं।

ऑक्सिन की खोज (Discovery of Auxins) – जैव विकास सिद्धान्त के प्रवर्तक **चार्ल्स डार्विन** प्रथम व्यक्ति थे जिन्हें पौधे के शीर्ष पर वृद्धिकारी पदार्थ का आभास हुआ था। **चार्ल्स डार्विन** एवं **फ्रेन्सिस डार्विन** ने केनेरीघास *(Phalaris canariensis)* पर किये गये प्रयोगों का वर्णन अपनी पुस्तक "द पॉवर ऑफ मूवमेन्ट इन प्लाण्टस" में किया। डार्विन के अनुसार प्रांकुरचोल (Coleoptile) को एक दिशा में प्रकाश देने पर यह प्रकाश की तरफ मुड़ता है। इन्होंने इस प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रांकुरचोल को एक दिशिक प्रकाश देने पर कुछ पदार्थ जो शीर्ष पर बनते है, नीचे की ओर स्थानान्तरित हो जाते है जिसके फलस्वरूप इस भाग में वक्रण उत्पन्न हो जाता है। डार्विन द्वारा किये गये प्रयोग को बाद में **बॉयसन जेनसन** तथा **पाल** ने आगे बढ़ाया।

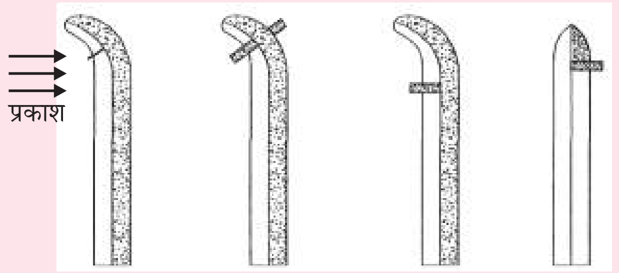

चित्र 13.5 बॉयसन-जैनसन के प्रयोग

बॉयसन जेनसन (Boysen Jensen 1910 -13) ने जई *(Avena sativa)* के प्रांकुरचोल पर प्रयोग किया तथा बताया कि प्रांकुरचोल का शीर्ष काट देने पर यह प्रकाशानुवर्तन (Phototropism) अथवा वक्रण प्रदर्शित नहीं करता है । यदि काटे हुए शीर्ष को पुनः स्थापित कर दिया जाये तो वक्रण अथवा प्रकाशानुवर्तन क्षमता पुनः स्थापित हो जाती है। शिरोच्छेदित शीर्ष व ठूंठ (Stump) के मध्य जिलेटिन का टुकड़ा रखने पर भी वक्रण क्षमता बनी रहती है।

यदि प्रांकुरचोल की अप्रदीप्त सतह (Darkside) पर आधे भाग में एक अनुप्रस्थ चीरा (Horizontal slit) लगाकर उसमें अभ्रक की प्लेट लगादी जाती है तो प्रांकुरचोल प्रकाश की ओर नहीं मुड़ता है, परन्तु चीरा और अभ्रक की प्लेट प्रकाशित सतह (Illuminated side) पर लगाई जाए तो प्रांकुरचोल प्रकाश की ओर मुड़ जाता है। उपरोक्त प्रयोग के आधार पर उन्होनें यह निष्कर्ष निकाला कि प्रकाशानुवर्तन अथवा वक्रण के लिए उत्तरदायी पदार्थ या उद्दीपक अप्रदीप्त पार्श्व से नीचे की ओर स्थानान्तरित होता है।

पाल (Paal, 1919) ने भी इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रयोग किये एवं सिद्ध किया कि शीर्षभाग में रसायन उपस्थित होते है जो वृद्धि प्रवर्तक होते हैं। इन्होंने यह भी बताया कि शीर्ष में उत्पन्न होने वाला पदार्थ जल में विलयशील होता है।

ऑक्सिन की खोज का श्रेय **एफ. डब्लयू. वेन्ट** (F.W.Went, 1926 - 28) को दिया जाता है। उसने वृद्धिकारी पदार्थ को वियोजित (Isolate) करने में सफलता प्राप्त की। उन्होनें जई के प्रांकुरचोल का शीर्ष काटकर उसे अगार (Agar) के घनाकार टुकड़े के ऊपर रखा। इसके पश्चात शीर्ष को अगार से अलग करके अगार को छोटे - छोटे टुकड़ों में बाँट दिया तथा छोटे - छोटे टुकड़ों को प्रांकुरचोल के ठूंठ पर स्थापित करने पर पाया कि वृद्धि उसी प्रकार पुनः स्थापित हो जाती है। इसके विपरित साधारण अगार खण्ड को प्रांकुरचोल के ठूंठ पर रखने पर वृद्धि नहीं होती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कुछ पदार्थ प्रांकुरचोल से नीचे की ओर अगार खण्ड में स्थानान्तरित होते हैं जो वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। अपने प्रयोगों के आधार पर **वेन्ट** ने पाया कि प्रांकुरचोल को एक ओर से प्रकाशित किये जाने पर प्रदीप्त क्षेत्र में ऑक्सिन की मात्रा कम होती है। उन्होंने अपने दूसरे प्रयोगों में जई के शीर्ष को अगार के दो टुकड़ों, जिनके बीच में अभ्रक की पतली प्लेट लगी थी, इस प्रकार रखा जिससे शीर्ष आधा- आधा दोनों टुकड़ों पर रहे। एक पार्श्व से प्रकाश डालने पर हार्मोन का 65 प्रतिशत भाग अप्रकाशित दिशा के टुकड़े में एकत्रित होता है।

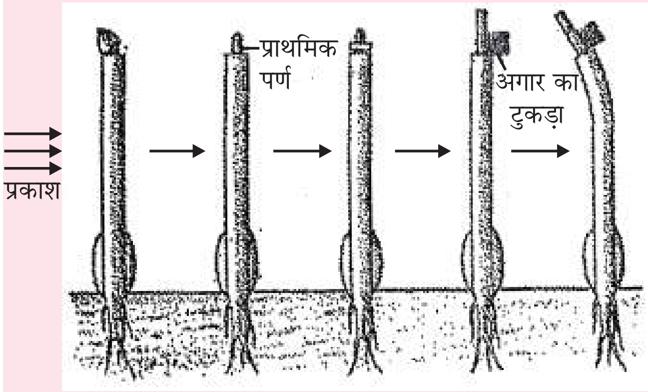

चित्र 13.6 वैन्ट का प्रयोग

अप्रकाशित भाग में हार्मोन की मात्रा अधिक होने के कारण इस भाग की कोशिकाओं का अधिक विस्तारण हो जाता है और प्ररोह प्रकाश की ओर मुड़ जाता है।

इसी प्रकार कुछ दूसरे वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि प्रांकुरचोल अथवा मूल शीर्ष को क्षैतिज स्थिति में रखने पर हार्मोन का विस्थापन तथा प्रवाह गुरूत्वाकर्षण के कारण नीचे की ओर हो जाता है। नीचे की कोशिकाओं में ऑक्सिन की अधिक सान्द्रता प्ररोह शीर्ष के नीचे की कोशिकाओं को वृद्धि के लिए प्रेरित करती है एवं वह ऊपर की तरफ मुड़ जाता है। परन्तु मूल शीर्ष में ऑक्सिन, वृद्धि को संदमित (Retard) करता है अत: नीचे की कोशिकाओं में कम वृद्धि होने से वह नीचे की ओर मुड़ जाता है।

ऑक्सिन की परिभाषा – *'वे कार्बनिक पदार्थ जो 0.01 मोलर से कम सान्द्रता में प्ररोह के विवर्धन को अभिवृद्धित करते हैं।'*

ऑक्सिन की रासायनिक प्रकृति

(Chemical nature of auxins)

कोग्ल (Kogl, 1931) ने उस पदार्थों को जो जई के प्रांकुरलोच में वक्रता प्रेरित करने में समर्थ है, **ऑक्सिन** (Auxin) नाम दिया। **कोग्ल तथा हैग्न - स्मिट** (Kogl and Haagen-Smit, 1931) ने मानव के मूत्र से ऑक्सिन के समान पदार्थ पृथक किया। इसे इन्होनें ऑक्सिन A – नाम दिया जिसका सूत्र $C_{18}H_{32}O_5$ होता है। ऑक्सिन दो प्रकार के होते है

(1) प्राकृतिक ऑक्सिन (2) संश्लिष्ट ऑक्सिन

(1) प्राकृतिक ऑक्सिन (Natural Auxins)

कोग्ल एवं साथियों ने पुन: मानव मूत्र से ही एक अन्य पदार्थ पृथक किया जिसे **हेटरोऑक्सिन** (Heteroauxin) नाम दिया। इसका अणु सूत्र $C_{10}H_9O_2N$ है तथा इसे **इण्डोल - 3- ऐसीटिक अम्ल** (Indole -3- acetic acid or IAA) कहते है। यह पौधों में पाया जाने वाला **प्राकृतिक ऑक्सिन** है। अन्य प्राकृतिक ऑक्सिन IAA के व्युत्पन्न के रूप में पाये जाते हैं। प्राकृतिक ऑक्सिन शीर्ष विभज्योतक में निर्मित होते हैं एवं इनका संश्लेषण ट्रिप्टोफेन नामक अमीनो अम्ल से होता है। इसके संश्लेषण के लिए Zn अनिवार्य होता है।

प्राकृतिक ऑक्सिन

(i) इण्डोल-3-ऐसीटिक अम्ल (IAA)

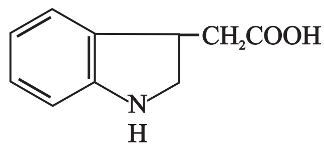

संश्लिष्ट ऑक्सिन

(ii) इण्डोल-3-ब्यूटायरिक अम्ल (IBA)

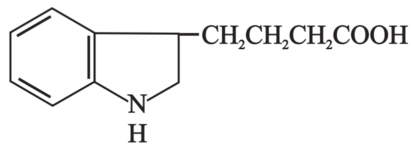

(iii) नेफ्थेलीन ऐसीटिक अम्ल (NAA)

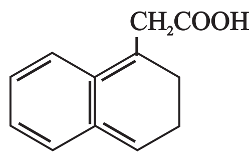

(iv) 2, 4- डाई क्लोरो फिनौक्सी ऐसीटिक अम्ल (2, 4-डी)

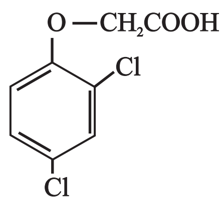

(v) 2, 4, 5- ट्राई क्लोरो फिनौक्सी ऐसीटिक अम्ल (2, 4, 5-टी)

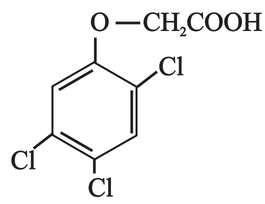

चित्र 13.7 प्रमुख ऑक्सिन्स

(2) संश्लिष्ट ऑक्सिन (Synthetic auxins)

कुछ संश्लिष्ट रासायनिक यौगिक भी ऑक्सिन के समान कार्य करते हैं। इन्हें संश्लिष्ट ऑक्सिन कहते है जैसे नैप्थैलिन ऐसीटिक अम्ल (NAA), इन्डोल 3- ब्यूटाइरिक अम्ल (IBA), 2 - 4 डाइक्लोरो फिनॉक्सि ऐसीटिक अम्ल (2-4 D), इन्डोल 3 - प्रोपियोनिक अम्ल (IPA)। पादपों के सभी भागों में ऑक्सिन की कुछ मात्रा उपस्थित होती

है परन्तु वृद्धि अथवा परिवर्तनशील ऊतकों में इनकी सर्वाधिक सान्द्रता पाई जाती है। ये शीर्ष से आधार की तरफ गमन करते है (ध्रुवीय अभिगमन) एवं इनका स्थानान्तरण विसरण द्वारा एक कोशिका से दूसरी कोशिका में होता है।

ऑक्सिन के कर्यिकीय प्रभाव (Physiological effect of auxins)

(1) शीर्ष प्रभाविता या शिखाग्र प्रमुखता (Apical dominance) – शीर्षस्थ कलिका की उपस्थिति से पार्श्व अथवा कक्षस्थ कलिकाओं की वृद्धि पूर्णत अथवा आंशिक रूप से निरूद्ध रहती है। इस स्थिति को **शीर्ष प्रभाविता** कहते है। शीर्ष कलिका द्वारा ऑक्सिन का संश्लेषण होता है जो नीचे की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। इसके कारण पार्श्व कलिकाओं की वृद्धि रूक जाती है। यदि शीर्षस्थ कलिका को काट दिया जाये तो पार्श्व एवं कक्षस्थ कलिकाएं विकसित होने लगती है। जिससे पादप झाड़िनुमा हो जाता है। मेंहदी व चने में शीर्ष कलिकाओं को तोड़ा जाता है।

(2) कोशिका दीर्घीकरण (Cell - elongation) – ऑक्सिन का मुख्य कार्य प्ररोह शीर्ष में विभाजन के फलस्वरूप निर्मित कोशिकाओं का दीर्घीकरण करना है। प्ररोह में ऑक्सिन की अधिक सान्द्रता शीर्ष दीर्घीकरण को प्रेरित करती है। इसलिए प्ररोह शीर्ष धनात्मक प्रकाशानुवर्ती एवं ऋणात्मक गुरूत्वानुवर्ती होता है।

(3) जड़ों का समारंभन (Root initiation) – ऑक्सिन जड़ों के निकलने को प्रेरित करता है। कुछ पौधे जैसे गुलाब, बोगेनविलिया, नीबू, सन्तरा आदि में तना या कलम लगाकर नया पौधा तैयार किया जाता है। यदि कलम के निचले सिरे को ऑक्सिन के घोल में डूबोकर लगाया जाये तो कटे भाग पर शीघ्र ही जड़े निकल आती है। वृहद पैमाने पर इस कार्य के लिए IBA (इन्डोल ब्यूटाइरिक अम्ल) विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(4) अनिषेकफलन (Parthenocarpy) – अनिषेचित अण्डाशय से विकसित फल अनिषेकफल तथा यह क्रिया **अनिषेकफलन** कहलाती है। ये फल बीज रहित होते हैं जैसे सन्तरा, नीबू, तरबूज, बैगन, अंगूर आदि। यदि कली अवस्था में पुष्पों से पुंकेसर निकालकर वर्तिकाग्र पर ऑक्सिन का छिड़काव कर दिया जाए तब बीज रहित अनिषेकफल उत्पन्न होते हैं।

(5) फसली पौधों का गिरने से बचाव (Prevention of lodging) – बहुत सी फसले जैसे गैहूँ के पौधे में दुर्बलता के कारण तेज हवा के प्रभाव से पौधा जड़ के पास से मुड़ कर गिर जाता है। ऑक्सिन का विलयन छोटे पौधों के ऊपर छिड़कने से पौधों के नीचे का भाग मजबूत हो जाता है और हवा से गिरने की सम्भावना कम रहती है।

(6) प्रसुप्तावस्था नियन्त्रण (Control of dormancy) – ऑक्सिन बीजों एवं कन्दों में प्रसुप्तावस्था को बनाये रखता है। ऑक्सिन बीजों के अंकुरण एवं कलिकाओं के प्रस्फुटन को रोकते हैं जिससे इन्हें लम्बे समय तक संग्रह किया जा सकता है। NAA के छिड़काव द्वारा आलू के कंदों को लगभग तीन वर्ष तक संग्रहित किया जा सकता है।

(7) पुष्पों की सघनता कम करना (Thinning of flowers) – कुछ वृक्षों जैसे आम की कुछ किस्मों में अमुक वर्ष में अत्यधिक पुष्प बनते है जिससे फलों की संख्या तो अधिक होती है परन्तु वे आकार में छोटे रह जाते हैं। ऑक्सिन जैसे NAA का छिड़काव करके अनावश्यक पुष्पन को नियन्त्रित किया जा सकता है।

(8) विलगन पर प्रभाव (Effect on abscission) – परिपक्व होने से पूर्व ही पत्तियों, फूलों तथा फलों का गिर जाना विलगन कहलाता है। ऐसा ऑक्सिन की कमी के कारण विलगन स्तर के निर्माण हो जाने से होता है। ऑक्सिन विगलन स्तर के निर्माण को अवरूद्ध करते है। NAA, 2-4 D, IBA आदि के छिड़काव द्वारा इन्हें अपरिपक्व अवस्था में झड़ने से रोका जा सकता है।

(9) खरपतवारों का उन्मूलन (Eradication of weeds) - खेतों में प्राय: फसली पौधों के साथ अनावश्यक पौधे उग जाते है। ये पौधे जल, खनिज इत्यादि पदार्थों के लिए फसली पौधों से प्रतियोगिता करते हैं जिससे फसल की वृद्धि अच्छी नहीं होती है। ऑक्सिन का उपयोग करके इन अनावश्यक पौधों को नष्ट किया जा सकता है। चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार को 2-4D (2-4 Dichloro phenoxy acetic acid) तथा 2-4-5 T (2-4-5 Trichlorophenoxy acetic acid) से जबकि घास खरपतवारों को डेलापेन (2:2 Dichloropropionic acid) नामक संश्लिष्ट ऑक्सिनों से नष्ट किया जा सकता है।

(10) पर्वों का लघुकरण (Shortening of internodes) – नाशपती, सेव आदि में लघुशाखाओं पर ही फलों का निर्माण होता है। इन पौधों से NAA के छिड़काव द्वारा दीर्घशाखाओं के पर्वों को लघु करके लघुशाखाओं की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

(11) ऊतक संवर्धन (Tissue culture) – ऊतक संवर्धन तकनीक द्वारा ऊतक एवं अंगों का कृत्रिम संवर्धन व्यापक रूप से किया जाता है। इस तकनीक में ऑक्सिन मूल निर्माण एवं कैलस विभेदन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते है।

II. जिब्बरेलिन्स
(Gibberellins)

जिब्बरेलिन की खोज जापान में हुई जो चावल के एक रोग से सम्बन्धित थी। जापान में 1890 में धान (चावल) के खेतों में कुछ पौधे असामान्य रूप से लम्बे पाये गये तथा उनमें पुष्पन का अभाव था। इस रोग का नाम **बेकने रोग** (Bakanae disease) दिया। **होरी** (Hori, 1898) ने इस रोग का अध्ययन किया एवं पाया कि इस रोग से ग्रसित पौधे असामान्य रूप से लम्बे तथा पतले होते हैं। इनमें पुष्पन नहीं होता तथा ये फल एव बीज उत्पन्न करने में असमर्थ होते हैं। अत: इन्हें **बेवकूफ नवोद्भिद** (Foolish seedling) कहा गया। धान का यह रोग एक कवक ***जिबरेला फ्यूजीकोराई*** *(Gibberella fujikuroi)* द्वारा होता है। **कुरोसावा** (Kurosawa,1926) ने प्रमाणित किया कि इस कवक के स्राव को पौधों पर छिड़कने से यह रोग हो जाता है। **याबुता तथा हायाशी** (Yabuta and Hayashi, 1939) ने इस कवक से शुद्ध क्रिस्टलीय रसायन प्राप्त किया तथा उसे **जिब्बरेलिन** नाम दिया। **ब्रायन तथा सहयोगियों** (Brian etal, 1954) ने एकल जिब्बरेलिन का शुद्ध रूप प्राप्त किया तथा इसे **जिब्बरेलिक अम्ल** कहा। विभिन्न कवकों एवं उच्च पादपों से अब तक 100 से अधिक प्रकार के जिब्बरेलिन प्राप्त किये जा चुके हैं। इनको GA_1 GA_2 GA_3 GA_4......GA_{100} आदि नामों से जाना जाता है। इनमें GA_3 सबसे पहले खोजे जाने वाले तथा सामान्य रूप में पाये जाने वाले जिब्बरेलिन में से एक है।

रासायनिक प्रकृति (Chemical Nature)

रासायनिक दृष्टि से सभी जिब्बरेलिन जिब्बरेलिक अम्ल होते हैं। सभी जिब्बरेलिन की मूल संरचना समान होती है। इनमें एक **गिबेन वलय** पाया जाता है। कुछ के गिबेन वलयों में 19 कार्बन तथा कुछ अन्य में 20 कार्बन परमाणु पाये जाते है। कुछ जिब्बरेलिन के रासायनिक सूत्र निम्न है

GA_1 - $C_{19}H_{24}O_6$; **GA_2** - $C_{19}H_{26}O_6$
GA_3 - $C_{19}H_{22}O_6$; **GA_4** - $C_{19}H_{24}O_5$

रासायनिक दृष्टि से सभी जिब्बरेलिन टरपीन्स (Terpenes) होते हैं। इनका स्थानान्तरण अध्रुवीय होता है एवं प्रकाश से प्रभावित नहीं होते हैं।

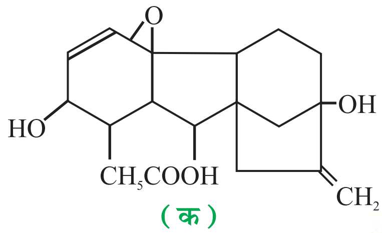

(क)

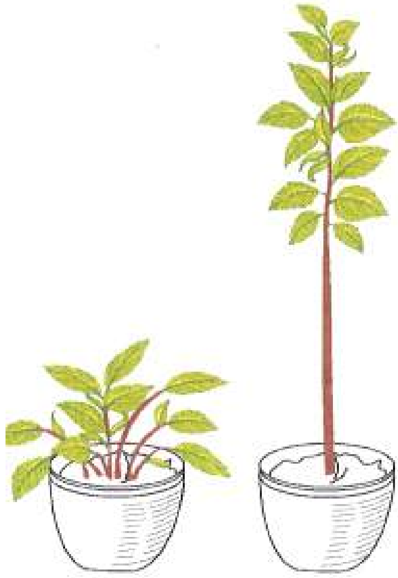
(ख) (ग)

चित्र 13.8 (क) जिब्बरेलिक अम्ल (GA_3)
(ख) रोजेट पादप
(ग) जिब्बरेलिन के प्रभाव से रोजेट पादप की लम्बाई में वृद्धि (बोल्टिंग)

जिब्बरेलिन के कार्यिकीय प्रभाव
(Physiological Effects of Gibberellins)

जिब्बरेलिन के प्रमुख कर्यिकीय प्रभाव निम्न है।

(1) पर्व दीर्घन (Internode elongation) – जिब्बरेलिन पौधों में पर्व दीर्घन द्वारा पौधे की लम्बाई में वृद्धि को प्रेरित करता है। यह पत्तियों के आकार में वृद्धि को भी प्रेरित करता है। रोजेट स्वभाव वाले द्विवर्षी पादपों में यह दीर्घित पर्णरहित पर्व के निर्माण को प्रेरित करता है। इस दीर्घित पर्णरहित पर्व को **बोल्ट** (Bolt) तथा इस क्रिया को **बोल्टकरण** (Bolting) कहते है। जिब्बरेलिन उपचार द्वारा आनुवंशिक रूप से बौने पौधों को भी लम्बा किया जा सकता है। प्राकृतिक रूप से रोजेट स्वभाव का लम्बे, दीर्घित रूप में परिवर्तन बोल्टकरण कहलाता है।

(2) बीजाकुंरण (Seed germination) – धान्य फसलों जैसे गेहूँ, जौ, मक्का आदि के बीजों के अंकुरण में जिब्बरेलिन प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इन खाद्यानों के बीज जल अवशोषित कर फूल जाते

हैं तथा इनके भ्रूण जिब्बरेलिन का संश्लेषण करते हैं जो एल्यूरोन पर्त में विसरित हो जाता है। यह एमाइलेज (Amylase), प्रोटीएज (Protease), लाइपेज (Lipase) तथा राइबोन्यूक्लिएज (Ribonuclease) इत्यादि एन्जाइम के संश्लेषण को प्रेरित करता है। ये एन्जाइम भ्रूणपोष में उपस्थित खाद्य पदार्थों का अपघटन अर्थात् पाचन कर देते हैं। इस प्रकार पाचन के पश्चात बने उत्पाद भ्रूण की वृद्धि में काम आते है।

(3) प्रसुप्ति भंग करना (Breaking of dormancy) – जिब्बरेलिन अनेक वृक्षों की कलिकाओं तथा बीजों की प्रसुप्तावस्था को नष्ट कर उन्हें अंकुरित होने के लिए प्रेरित करते हैं। जिब्बरेलिन की उच्च सान्द्रता द्वारा प्रसुप्ति को निष्प्रभावी किया जा सकता है।

(4) पुष्पन (Flowering) – जिब्बरेलिन, कुछ पौधों में पुष्पन के लिए प्रेरक शीत उपचार (Vernalization) अथवा अपेक्षित दीप्तिकाल (Photoperiod) का प्रतिस्थापन करने में सक्षम होते हैं।

(5) अनिषेकफलन (Parthenocarpy) – ऑक्सिन की तुलना में जिब्बरेलिन अनिषेकफलन को प्रेरित करने में कई गुना अधिक प्रभावशाली होता है। जिब्बरेलिन द्वारा टमाटर, सेब, नाशपती या पोम या गुठली युक्त फलों में अनिषेकफलन ऑक्सिन की तुलना में अधिक सुगमता से किया जा सकता है।

III. साइटोकाइनिन
(Cytokinins)

हेबरलैण्ड (G. Haberlandt, 1913) ने सर्वप्रथम प्रेक्षण किया कि कुछ पादपों के फ्लोएम में कुछ विलय पदार्थ उपस्थित होते है जो कोशिका विभाजन को उद्दीपित करते हैं। इसके पश्चात **वान ओवर बीक** (J. van Overbeek,1941) ने बताया कि नारियल पानी में ऐसे पदार्थ उपस्थित होते है जो कोशिका विभाजन को प्रेरित करते हैं। **स्कुग तथा मिलर** (Skoog and Miller, 1955) ने यीस्ट के DNA से कोशिका विभाजन के लिए अत्यन्त उपयोगी पदार्थ अलग किया तथा इसे **काइनेटिन** (Kinetin) नाम दिया। **लेथम** (Letham, 1963) ने काइनेटिन को **साइटोकाइनिन** नाम दिया। **लेथम एवं मिलर** (Letham and Miller, 1964) ने मक्का के भ्रूणपोष से काइनेटिन के समान पदार्थ विमुक्त किया जिसे **जियाटिन** (Zeatin) कहा गया। जियाटिन प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला प्रथम साइटोकाइनिन है।

रासायनिक प्रकृति (Chemical nature)

साइटोकाइनिन न्यूक्लिक अम्लों के अपघटन से बनते हैं। संरचनात्मक दृष्टि से ये अमीनोप्यूरीन होते हैं जिनमें फरफ्यूरल वलय (Furfuryl ring) पायी जाती है। इस प्रकार प्रथमतः पहचाने गए साइटोकाइनिन का नाम **6-फरफ्यूरिल अमीनो प्यूरीन** है। साइटोकाइनिन का संश्लेषण पादपों में उन स्थानों पर होता है जहाँ कोशिकाएँ विभाजित होती रहती है, जैसे प्ररोह शीर्ष, मूल शीर्ष, विकासशील कलिका, तरूण फल इत्यादि। साइटोकाइनिन कोशिकाद्रव्य में t - RNA के संरचनात्मक घटक का कार्य करते है।

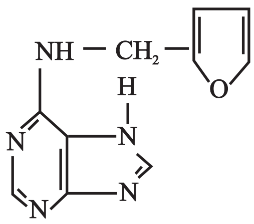

साइटोकाइनिन
(काइनेटिन-6-फरफ्यूरल एमीनो प्यूरीन)

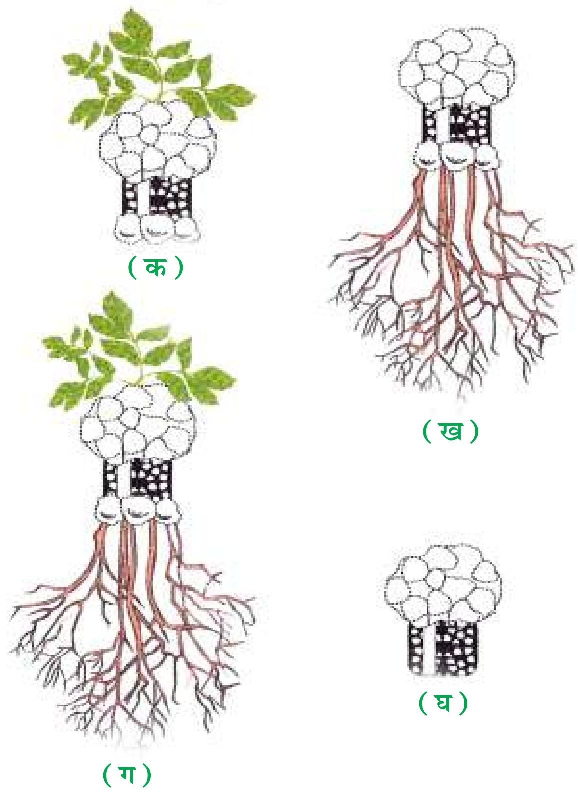

चित्र 13.9 (क) अधिक साइटोकाइनिन व कम ऑक्सिन अनुपात से केवल प्ररोह का विकास, (ख) कम साइटोकोनिन व अधिक ऑक्सिन अनुपात से केवल जड़ों का विकास, (ग) मध्यम साइटोकाइनिन व मध्यम आक्सिन अनुपात से जड़ तथा प्ररोह दोनों का विकास, (घ) मध्यम साइटोकाइनिन व कम ऑक्सिन अनुपात से केवल कैलस का विकास

साइटोकाइनिन के कार्यिकीय प्रभाव
(Physiological effects of cytokinins)

1. कोशिका विभाजन – साइटोकाइनिन, ऑक्सिन की उपस्थिति में कोशिका विभाजन को प्रेरित करता है। ये पादप में

विभज्योतक ऊतक निर्माण की क्रिया को प्रेरित करते हैं।

2. कोशिका दीर्घन – साइटोकाइनिन कोशिकाओं के दीर्घन को प्रेरित करते है। तम्बाकू की मूल कोशिकाएं साइटोकाइनिन के प्रभाव से सामान्य की तुलना में चार गुना दीर्घित पाई गई। साइटोकाइनिन यह प्रभाव, आक्सिन एवं अथवा इथाइलिन के साथ मिलकर प्रदर्शित करता हैं।

3. कोशिका विभेदन – कोशिका विभेदन भी इससे प्रभावित होता है। ऑक्सिन के साथ मिलकर यह पौधों में अंग निर्माण को नियन्त्रित करते हैं। साइटोकाइनिन ऑक्सिन की उपस्थिति में विभिन्न अनुपात में अलग – अलग प्रभाव उत्पन्न करता है।

ऊतक संवर्धन प्रक्रिया में पोषक माध्यम में अधिक साइटोकाइनिन एवं कम ऑक्सिन कैलस से प्ररोह विकास को प्रेरित करता है। कम साइटोकाइनिन एवं अधिक ऑक्सिन जड़ों के निर्माण व विभेदन को प्रेरित करता है। दोनों की समान मात्रा सें प्ररोह एवं जड़ दोनों का विकास होता है। ऊतक संवर्धन व आनुवंशिक अभियांत्रिकी में पादप वृद्धि नियंत्रक बहुत लाभदायक है क्योंकि नई किस्म के पौधे उत्पन्न करने में कोशिका संवर्धन काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है।

4. शीर्ष प्रभाविता का निरोध – साइटोकाइनिन के छिड़काव से शीर्ष प्रमुखता समाप्त हो जाती है तथा पार्श्वीय कलिकाओं की वृद्धि होने लगती है।

5. प्रसुप्तता को नष्ट करना – साइटोकाइनिन द्वारा बीजों व कन्दों की प्रसुप्तता नष्ट हो जाती है एवं उनको अंकुरण के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

6. जीर्णता विलम्ब (Delaying of senescence) – पादपों में साइटोकाइनिन जीर्णता को रोकता है। सामान्यत: जीर्णता से पूर्व पत्तियों में प्रोटीन, पर्णहरित, न्यूक्लिक अम्ल आदि का विघटन प्रारम्भ हो जाता है, परन्तु साइटोकाइनिन के प्रभाव से इनका अपघटन कम हो जाता है ।जिससे जीर्णता का प्रभाव धीरे – धीरे प्रकट होता है। साइटोकाइनिन के जीर्णता विलम्ब प्रभाव को **रिचमौण्ड लैंग प्रभाव** (Richmond lang effect) कहते है।

IV. इथाइलिन
(Ethylene)

इथाइलिन एक गैसीय हार्मोन है। यह असंतृप्त हाइड्रोकार्बन होता है। **आर. गेने** (R. Gane, 1934) ने यह प्रमाणित किया कि इथाइलिन एक प्राकृतिक गैसीय हार्मोन है। यह पादप के सभी अंगों द्वारा संश्लेषित होती है तथा फलों के परिपक्वन व वृद्धि को उद्दीपित करती है। सामान्यत: इसकी उच्च सान्द्रता पत्तियों, सुषुप्त कलिकाओं व पुष्पों में पाई जाती है। फलों के परिपक्वन के साथ इसका निर्माण बढ़ जाता है। इथाइलिन गैसीय पदार्थ है। इसके अणु सूक्ष्म तथा जल विलेय होते हैं इसलिए पादप ऊतकों में इसका परिवहन सामान्य विसरण विधि द्वारा अन्तर्कोशीय अवकाशों में हो जाता है। इसके अप्राकृतिक निर्माण हेतु **इथेफॉन** का उपयोग किया जाता है। 'इथेफॉन' या 2 – क्लोरो एथिल फास्फोरिक अम्ल से इथाइलिन प्राप्त होती है।

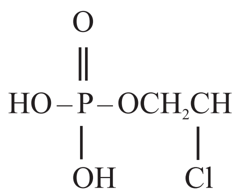

2 – क्लोरो एथिल फास्फोरिक अम्ल

इथाइलिन के कर्यिकीय प्रभाव
(Physiological effects of ethylene)

(1) वृद्धि पर प्रभाव (Influence on growth) – इथाइलिन सामान्यत: प्ररोह एवं मूल की लम्बाई में वृद्धि को अवरूद्ध कर मोटाई में वृद्धि को प्रेरित करती है। अपस्थानिक जड़ों का निर्माण बढ़ जाता है तथा पादप में क्षैतिज वृद्धि बढ़ जाती है।

(2) फलों का पकना (Ripennig of fruits) – फलों के प्राकृतिक परिपक्वन में इथाइलिन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। इथाइलिन के प्रभाव से कुछ जीन सक्रिय होकर ऐसे एन्जाइम का संश्लेषण करते है जो फल परिपक्वन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। ऐसे फलों को क्लाइमेक्टेरिक फल (Climacteric fruits) कहते हैं, जो पकने के समय इथाइलीन उत्पन्न करते हैं।

(3) पुष्पन पर प्रभाव (Effect on flowering) – इथाइलिन अधिकतर पादप जातियों में पुष्पन क्रिया पर निरोधी प्रभाव डालती है। परन्तु आम, अनानास इत्यादि में पुष्पन को प्रेरित करती है। ये पुष्पों में मादापन प्रभाव द्वारा मादापुष्पों की संख्या में वृद्धि करती है।

(4) विलगन (Abscission) - इथाइलिन पत्तियों, फलों तथा पुष्पों में विलगन को तीव्र करती है।

(5) जीर्णता (Senescence) – इथाइलिन पादपों में जीर्णता प्रेरित करती है जिससे पत्तियाँ पीली पड़कर नष्ट हो जाती है। इसकी अधिकता से उपापवयी क्रियाएं बन्द हो जाती हैं। जिससे पुष्पों की पंखुडिया मुरझा कर गिर जाती है।

वृद्धि अवरोधक
(Growth Inhibitors)

वे हार्मोन या पदार्थ जो वृद्धि की दर को घटाते हैं, वृद्धि अवरोधक कहलाते हैं। ये पदार्थ वृद्धि के नियन्त्रण व संतुलन के लिए आवश्यक हैं। इसके अन्तर्गत एब्सिसिक अम्ल प्रमुख हार्मोन है।

एब्सिसिक अम्ल
(Abscisic acid)

एब्सिसिक अम्ल पौधों में प्राकृतिक रूप से पाया जाता है। यह प्रमुख वृद्धि अवरोधक हार्मोन है। यह पादप को प्रतिकूल वातावरणीय परिस्थितियों का सामना करने में सहायता करता है। अत: इसे **तनाव हार्मोन** (Stress hormone) भी कहते हैं।

वेयरिंग (Wareing, 1963) ने एसर (Acer) नामक पादप की पत्तियों से एक वृद्धिरोधक पदार्थ पृथक किया एवं इस पदार्थ का नाम **डोर्मिन** (Dormin) रखा। **एडिकोट एवं सहयोगियों** (Addicott et al., 1963) ने कपास की पुष्प कलिकाओं से एक पदार्थ निकाला जिसका नाम उन्होंनें एब्सिसिन (Abscisin) रखा। बाद में यह सिद्ध हुआ की डोर्मिन व एब्सिसिन एक ही पदार्थ हैं और उनका नाम **एब्सिसिक अम्ल** (ABA) रखा गया।

एब्सिसिक अम्ल का रासायनिक सूत्र $C_{15}H_{20}O_4$ है। यह पांच कार्बन से निर्मित तीन आइसोप्रीन इकाइयों का बना होता है। इसमें एकल कार्बोक्सिल (- COOH) समूह उपस्थित होता है। ABA का अधिकांश संश्लेषण हरितलवक में कैरोटिनॉइड के अपघटन से पानी की कमी आने पर होता है।

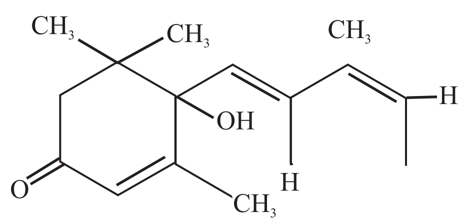

चित्र 13.10 एब्सिसिक अम्ल

एब्सिसिक अम्ल के कार्यिकीय प्रभाव

(1) पत्तियों का विगलन (Abscission of leaves) - ABA के घोल को पत्तियों पर छिड़कने से उनका शीघ्र विलगन हो जाता है।

(2) कलियों तथा बीजों की प्रसुप्तता (Dormancy of buds and seeds) - ABA कलियों एवं बीजों की प्रसुप्तता को प्रेरित करता है जिससे कलियों की वृद्धि एवं अंकुरण हो जाता है।

(3) वाष्पोत्सर्जन रोधी (Antitranspirant) - ABA की अल्पमात्रा पत्तियों के रन्ध्रों को आंशिक रूप से बन्द कर देती है, जिससे वाष्पोत्सर्जन की दर कम हो जाती है।

(4) वृद्धि का संदमन (Inhibition of growth) - ABA कोशिका विभाजन एवं कोशिका परिवर्धन दोनों को अवरूद्ध कर देता है।

(5) जीर्णता (Senescence) - ABA अनेक पादपों में जीर्णता को प्रेरित करता है। जिससे पर्णहरित, प्रोटीन एवं RNA का तीव्र ह्रास होता है।

(6) तनाव हार्मोन के रूप में (As a stress hormone) - ABA का निर्माण पत्तियों में जलाभाव की स्थितियों में बढ़ जाता है जिससे रंध्र का का बन्द होना प्रेरित होता है। जो 56% वाष्पोत्सर्जन एवं 14% प्रकाश संश्लेषण को कम कर देता है।

दीप्तिकालिता
(Photoperiodism)

पुष्पीय पादपों में निश्चित समय तक कायिक वृद्धि होने के पश्चात पौधे जनन अवस्था में प्रवेश करते हैं तथा उनमें पुष्पन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। कायिक अवस्था भिन्न - भिन्न पौधों में अलग - अलग होती हैं। पौधों मे कायिक अवस्था से पुष्पन अवस्था में प्रवेश कई कारकों द्वारा नियन्त्रित होता है। इनमें से एक कारक **प्रकाश की अवधि** अर्थात **दीप्तिकालिता** है।

पुष्पन पर दीप्तिकालिता के प्रभाव का अध्ययन सर्वप्रथम दो अमेरिकी वैज्ञानिकों **गार्नर तथा एलार्ड** (W.W. Garner and H.A. Allard, 1920) ने किया। इन्होंने देखा कि जब तम्बाकू की मेरीलैण्ड मैमोथ किस्म को वसन्त ऋतु में बोया जाये तो इसमें अच्छी कायिक वृद्धि के बावजूद भी पुष्पन नहीं होता है। परन्तु इस किस्म के बीजों को शरद ऋतु में ग्रीनहाऊस में अंकुरित करके इनके नवोद्भिदों को वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में खेतों में स्थानान्तरित कर दिया जाये तो इन पौधों में ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में ही पुष्पन हो जाता है। इस प्रयोग के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पुष्पन को प्रभावित करने वाला **क्रान्तिक कारक** (Critical factor) प्रकाशकाल की अवधि है जिसे **दीप्तिकाल** (Photoperiod) कहते हैं। दीप्तिकालिता को परिभाषित करते हुए उन्होंने बताया कि **''दिन की वह लम्बाई जो पौधों के पुष्पन के लिए अनुकूल हो तथा दिन की आपेक्षिक लम्बाई अथवा आपेक्षिक दीप्तिकाल के प्रति पौधे की अनुक्रिया को दीप्तिकालिता कहते है।''** **हिलमेन** (Hillman, 1969) के अनुसार **'प्रकाश तथा अन्धकार अवधियों के अन्तरालों के प्रति पौधों की अनुक्रिया को दीप्तिकालिता कहते हैं।'**

दीप्तिकालिता का वर्गीकरण -

दीप्तिकालिता अनुक्रियाओं के आधार पर पौधों को निम्न वर्गों में बांटा गया है -

(i) अल्पदीप्तिकाली पादप या लघु दिवस पादप (Short Day Plants; SDP) -

ऐसे पादप जो निश्चित क्रान्तिक दीप्तिकाल से कम अवधि में दीप्तिकाल उपलब्ध होने पर पुष्पन करे, **लघु दिवस पादप** कहलाते हैं। इन पादपों को पुष्प उत्पन्न करने के लिए 12 घण्टे से कम लम्बे दिन तथा

सतत् लम्बी अन्धकार अवधि (14 –16 घण्टे) की आवश्यकता होती है। अत: इन्हें **दीर्घ रात्रि पादप** कहना अधिक उपयुक्त होता है। अगर इनके सतत् अन्धकार की अवधि को एक प्रकाश पुंज देकर तोड़ दिया जाये तो पुष्पन नहीं होगा। उदा. तम्बाकू, सोयाबीन, गन्ना, डहेलिया, शकरकन्द, सरसों इत्यादि।

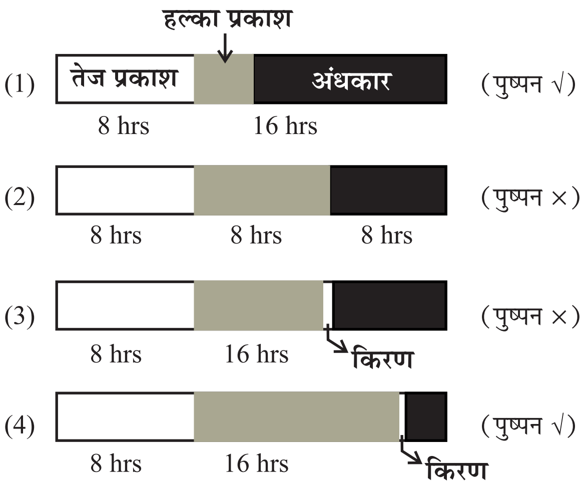

चित्र 13.11 अल्पदीप्तिकालिक पादपों की विभिन्न अवस्थाएं

(ii) दीर्घ – दीप्तिकाली पादप या दीर्घ दिवस पादप (Long Day Plants, LDP)

वे पौधे जिनमें पुष्पन के लिए क्रान्तिक दीप्तिकाल से दीर्घ अवधि का दीप्तिकाल आवश्यक हो **दीर्घ दिवस पादप** कहलाते हैं। इन पादपों को पुष्पन के लिए 12 घण्टे से अधिक सतत् लम्बे दिन तथा छोटी अन्धकार अवधि की अवश्यकता होती है। इन्हें **अल्परात्रि पादप** भी कहा जाता है। इन पौधों की सतत प्रकाश अवधि को अन्धेरा देकर तोड़ने पर पुष्पन क्रिया अवरूद्ध हो जाती है। उदा. पालक, मूली, चुकन्दर, गैहूँ, गाजर, आलू इत्यादि।

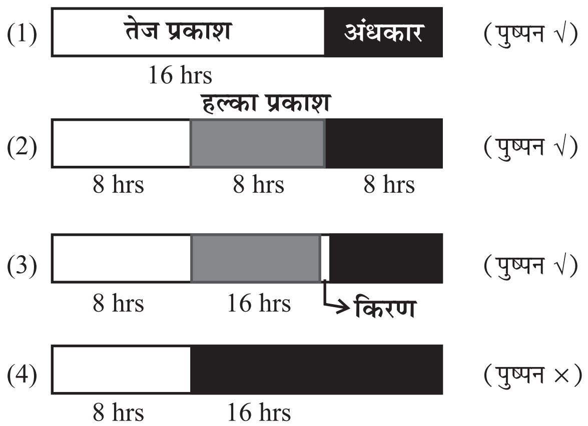

चित्र 13.12 दीर्घदीप्तिकाली पादपों की विभिन्न अवस्थाएँ

(iii) दिवस उदासीन पादप (Day Neutral Plants) – वे पौधे जिनमें पुष्पन प्रक्रिया पर दीप्तिकाल का प्रभाव नहीं पड़ता है तथा लगभग सभी सम्भव दीप्तिकालों में पुष्पन कर सकते हैं, **दिवस उदासीन पौधे** कहलाते है। उदा. टमाटर, कपास, मक्का, मिर्च, सूरजमुखी इत्यादि।

दीप्तिकालिक प्रेरण का स्थल (Site of photoperiodic stimulus) – प्रदीप्तिकाल को ग्रहण करने का कार्य मुख्यरूप से पत्तियों एवं कलिकाओं द्वारा किया जाता है। **चैलियाखान** (1936) वैज्ञानिक ने अपने प्रयोगों सें यह निष्कर्ष निकाला कि केवल एक पत्ती ही दीप्तिकालिक उद्दीपन को ग्रहण करने के लिए पर्याप्त होती है। प्रकाश उद्दीपन ग्रहण करने में तरूण पत्तियों की अपेक्षा पूर्ण विस्तारित व विकसित पत्तियाँ अधिक संवेदी होती हैं। पूर्णत: परिपक्व या पुरानी पत्तियों में उद्दीपन के प्रति संवेदनशीलता धीरे – धीरे कम हो जाती है। प्रकाश उद्दीपन का संचारण पत्तियों से पुष्पन कलिकाओं को फ्लोएम के माध्यम से होता है, परन्तु इसका संचरण प्रकाश संश्लेषित उत्पादों के संचरण से स्वतन्त्र होता है।

दीप्तिकालिता की क्रिया विधि (Mechanism of photoperiodism)

पौधों में दीप्तिकालिता की क्रिया विधि को स्पष्ट करने के उद्देश्य सें कई सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्न है –

1. फ्लोरीजन परिकल्पना (Florigen hypothesis) – इसे **चैलीयाखान परिकल्पना** भी कहते है। जिसके अनुसार एक विशिष्ट दीप्तिकाल में पौधों में पुष्पों के निर्माण को प्रेरित करने वाला एक हार्मोन बनता है जिसे **फ्लोरीजन** कहते है। यह हार्मोन पत्तियों में बनता है।

फ्लोरीजन हार्मोन दो यौगिकों का सम्मिश्र होता है।

(i) जिब्बरेलिन :- स्तम्भ के परिवर्धन एवं वृद्धि के लिए आवश्यक, तथा

(ii) एन्थेसिन्स :- पुष्पन प्रेरण के लिए आवश्यक। जिब्बरेलिन दीर्घदीप्तिकाली (LDP) पादपों के लिए आवश्यक होता है तथा एन्थेसिन्स अल्प दीप्तिकालीक पादपों के लिए आवश्यक होता है। जब दीर्घ दीप्तिकालिक पौधों को अल्प कालिक प्रकाश में रखा जाता है तो उसमें एन्थेसिन्स अधिक मात्रा में तथा जिब्बरेलिन कम मात्रा में बनता है लेकिन जैसे ही उक्त पौधों की पत्तियों को दीर्घकालिक प्रकाश मिलता है जिब्बरेलिन की मात्रा एक साथ बढ़ती है और पौधे में पुष्पन प्रारम्भ हो जाता है।

अल्पदीप्तिकालिक पौधों (SDP) में विपरीत स्थिति होती है। जब SDP को दीर्घदीप्तिकालिक प्रकाश में रखा जाता है तो उसमें जिब्बरेलिन की मात्रा अधिक व एन्थेसिन्स की मात्रा कम होती है।

लेकिन जैसे ही उक्त पौधे की पत्तियों को अल्पकालिक प्रकाश मिलता है एन्थेसिन्स की मात्रा एक साथ बढ़ती है और पौधे में पुष्पन प्रारम्भ हो जाता है। अभी तक एन्थेसिन्स जैसे किसी पदार्थ का पृथक्करण या अभिव्यक्तिकरण नहीं किया जा सका है। इसलिए इस संकल्पना को स्थापित नहीं किया जा सका है।

2. फाइटोक्रोम सिद्धान्त (Phytochrome theory) – यह सिद्धान्त **बोर्थविक तथा हेण्डरिक्स** (Borthwick and Hendricks, 1950) द्वारा प्रतिपादित किया गया था। इन वैज्ञानिकों के अनुसार पौधों की पत्तियों के ऊतकों में एक प्रकाश ग्राही वर्णक पाया जाता है जिसे **फाइटोक्रोम** कहते है। फाइटोक्रोम चमकीला नीला/नीलहरित प्रोटीन युक्त पदार्थ है जो अन्त: परिवर्तनशील रूपों में उपस्थित होता है। फाइटोक्रोम के दो रूप क्रमश: P_{730} (Phytochrome far red; Pfr) तथा P_{660} (Phytochrome red`) है। P_{730} वर्णक 730 nm वाले प्रकाश (अवरक्त) को अवशोषित करता है तथा P_{660} वर्णक 660nm वाले प्रकाश (लाल विकिरण) को अवशोषित करता है। P_{660} रूप लाल विकिरण के प्रकाश को अवशोषित कर P_{730} में परिवर्तित हो जाता है। इसी प्रकार P_{730} रूप अवरक्त (Far red) विकिरणों को अवशोषित कर P_{660} में परिवर्तित हो जाता है।

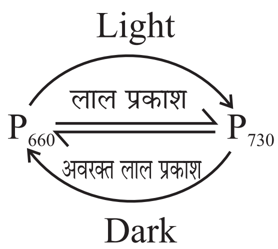

चित्र 13.13 फाइटोक्रोम सिद्धान्त का रेखिक चित्रण

दिन के समय सूर्य के प्रकाश में फाइटोक्रोम का Pfr स्वरूप पौधे में पर्याप्त मात्रा में एकत्रित होता है जो SDP में पुष्पन को अवरूद्ध करता है जबकि LDP में पुष्पन को प्रेरित करता है। जब सूर्य अस्त हो जाता है तो विपरीत क्रिया होती है क्योंकि अंधकार में Pfr रूप Pr स्वरूप में परिवर्तित हो जाता है जिससे Pr की मात्रा बढ़ जाती है जो SDP में पुष्पन प्रेरित करता है जबकि LDP में पुष्पन को अवरूद्ध करता है। ऐसा माना जाता है कि फाइटोक्रोम के ये दो रूप पुष्पी हार्मोन के निर्माण को नियन्त्रित करते है जो पुष्पन को प्रभावित करता है।

प्रसुप्ति
(Dormancy)

पादपों में बीजों का पूर्ण विकास हो जाने के पश्चात उनकी (बीजों की) वृद्धि रुक जाती है। कुछ पौधों में अनुकूल वातावरणी परिस्थितियाँ उपलब्ध होने पर बीज अपने निर्माण के तत्काल पश्चात ही अंकुरित हो जाते हैं। परन्तु कुछ अन्य पौधों में अनुकूल वातावरणी परिस्थितियाँ उपलब्ध होने पर भी अंकुरित नहीं होते हैं अर्थात् ये बीज शरीर क्रियात्मक रूप से निष्क्रिय रहते हैं। बीजों की यह अवस्था **प्रसुप्तावस्था** (Dromant stage) तथा इस परिघटना को **प्रसुप्ति** (Dormancy) कहते हैं। प्रसुप्ति के कारण बीज का अंकुरण अस्थायी रूप से कुछ समय के लिए निलम्बित रहता है। इसके कारण बीज लम्बे समय तक जीवनक्षम (Viable) बने रहते हैं। निलम्बन अवधि मरूस्थलीय पादप जैसे बबूल *(Acacia)*, घास इत्यादि में 5 से 10 वर्ष तक होती है। आर्कटिक टुंड्रा में *ल्यूपीन (Lupin)* के बीजों में प्रसुप्तिता 1000 वर्ष की आंकी गई है। अधिकांश फसली पादपों के बीज 2 से 5 वर्ष तक प्रसुप्त रहते हैं। कुछ पादपों जैसे ***राइज़ोफोरा,*** मटर इत्यादि के बीजों में प्रसुप्तावस्था अनुपस्थित होती है। बीजों में प्रसुप्ति अन्तर्जात अथवा बहिर्जात कारकों के प्रभाव से होती है। अन्तर्जात कारक बीज की संरचना एवं परिवर्धन से सम्बन्धित होते है जबकि बहिर्जात कारक वातावरण एवं जलवायु से सम्बन्धित होते है।

प्राथमिक एवं द्वितीयक प्रसुप्ति
(Primary and Secondary dormancy)

जब बीज परिपक्व होने के तुरन्त पश्चात अनुकूल परिस्थितियाँ प्राप्त होने पर भी अपने आंतरिक अथवा संरचनात्मक एवं क्रियात्मक कारणों से अंकुरित नहीं होते हैं तो इसे **प्राथमिक प्रसुप्ति** कहते हैं, जबकि कुछ पादपों के बीजों में परिपक्वन के पश्चात संग्रह के दौरान होने वाले परिवर्तनों से प्रसुप्ति होती है, उसे **द्वितीयक प्रसुप्ति** कहते हैं।

प्रसुप्ति को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors affecting dormancy)

बीजों में प्रसुप्ति कई अन्तर्जात एवं बहिर्जात करकों से प्रभावित होती है जो निम्नानुसार हैं –

(1) कठोर बीजावरण (Hard seed coat) – कई बीजों में बीजावरण अत्यन्त कठोर होता है। यह बीजावरण अंकुरण के लिए आवश्यक जल (उदा. चना, मटर) एवं ऑक्सिन (उदा. जैन्थियम) के प्रति अपारगम्य होता है। कई बार यह यांत्रिक प्रतिरोध उत्पन्न कर भ्रूण को विकसित होने नहीं देता है। उदा. ***एमेरेन्थस***।

(2) भ्रूण की अपरिपक्वता (Immaturity of embryo) – कई पौधों में भ्रूण के परिपक्व होने से पूर्व ही बीजों का प्रकीर्णन हो जाता है। अत: इन बीजों का अंकुरण तब तक सम्भव नहीं होता है जब तक कि भ्रूण का परिपक्वन पूरा न हो जाए। उदा. *गिंगो बाइलोबा (Ginkgo biloba), नीटम निमोन (Gnetum gnemone)।*

(3) उत्तरपक्वन काल की आवश्यकता (Requirment of after ripening period) – कई पौधों के बीज परिपक्व होने के तुरन्त बाद अंकुरित नहीं हो पाते है। अपितु कुछ समय के विश्राम काल

के पश्चात अनुकूल परिस्थितियों में अंकुरित होते है। विश्राम काल की अवधि में ये बीज अंकुरण की क्षमता अर्जित कर लेते है। इस विश्राम काल को **उत्तरपक्वन काल** कहते है। विभिन्न जातियों में उत्तरपक्वनकाल की अवधि कुछ सप्ताह से कुछ महिनों की होती है। उदा. गैहूँ, जौ, जई आदि।

(4) विशिष्ट तापक्रम एवं प्रकाश की आवश्यकता (Requirement of specific temperature and light) – बीजों को अंकुरण से पूर्व शीत उपचार की आवश्यकता होती है। ये बीज जब तक विशिष्ट शीत – तापक्रम द्वारा उपचारित नहीं होते, अंकुरित नहीं हो पाते हैं। शीतऋतु में ये बीज प्राकृतिक रूप से उपचारित हो जाते हैं। शीत उपचार के लिए अनुकूल तापक्रम O^0C से 5^0C होता है। उदा. चैरी, ओक आदि। इसी प्रकार कुछ बीजों का अंकुरण, प्रकाश की अवधि, उसकी गुणवत्ता तथा मात्रा के प्रति अति संवेदी होता है। ये बीज **फोटोब्लास्टिक** (Photoblastic) कहलाते हैं। उदा. तम्बाकू, कैप्सेला इत्यादि।

(5) अंकुरण निरोधकों की उपस्थिति (Presence of germination inhibitors) – गूदेदार फलों के गूदे में उपस्थित कई पदार्थ बीजों के अंकुरण का निरोध करने में सक्षम होते हैं, इन्हें **अंकुरण निरोधक** कहते हैं। इनमें एब्सिसिक अम्ल (ABA), काउमेरिन (Coumarin), पेराएस्कार्बिक अम्ल (Para-ascorbic acid), फिनोलिक अम्ल (Phenofic acid), आदि प्रमुख हैं। बीजों के मृदा में पड़े रहने से ये पदार्थ धीरे – धीरे निक्षालित हो जाते है अर्थात धुल जाते हैं तत्पश्चात बीजों में अंकुरण हो जाता है। इन पदार्थों के निरोधी प्रभाव को जिब्बरेलिन से दूर किया जा सकता है।

बीज प्रसुप्ति भंग करने की विधियाँ
(Methods of breaking seed dormancy)

बीजों की प्रसुप्ति भंग करने के लिए विभिन्न प्रकार की विधियाँ अपनायी जाती है जो पादप जाति एवं प्रसुप्ति कारक पर निर्भर करती हैं। प्रसुप्ति भंग करने की कुछ सामान्य विधियाँ निम्नानुसार है –

(1) खुरचना (Scarification) – इस विधि में कठोर बीजावरण को तोड़कर अथवा खुरचकर कमजोर बना दिया जाता है। कई बार बीजों को तनु अम्ल (H_2SO_4), गरम जल अथवा वसा विलायकों में भिगोकर मुलायम बनाया जाता है।

(2) शीतन उपचार (Chilling treatment) – ऐसे बीज जिनकी प्रसुप्ति भंग करने के लिए प्राकृतिक शीत उद्भासन (Expoure) की आवश्यकता होती है, कृत्रिम रूप से शीत उपचारित कर इनकी प्रसुप्ति भंग की जा सकती है।

(3) एकान्तरिक तापक्रमों द्वारा उद्भासन (Exposure to alternate temperature) – कुछ पादप बीजों की प्रसुप्ति को क्रमशः उच्च व निम्न तापक्रम से उद्भासित करके समाप्त किया जा सकता है।

(4) प्रकाश (Light) – कुछ धनात्मक प्रकाशस्फटी (Positive photoblastic) बीजों को लाल प्रकाश से उद्भासित करके इनकी अंकुरण क्षमता को बढ़ाया जाता है।

(5) दाब (Pressure) – कुछ प्रसुप्त बीजों को 18^0C से 20^0C तापक्रम पर 2000 वायुमण्डलीय दाब पर रखने से इनकी अंकुरण क्षमता बढ़ जाती है क्योंकि इससे बीजावरण कमजोर हो जाते हैं तथा इसकी पारगम्यता बढ़ जाती है।

(6) वृद्धि नियन्त्रकों का उपयोग (Use of growth regulators) – जिन बीजों की प्रसुप्ति का कारण शीतन उपचार की आवश्यकता, उत्तरपक्वनकाल, निरोधकों की उपस्थिति अथवा विशिष्ट प्रकाश की आवश्यकता होती है, उनकी प्रसुप्ति को वृद्धि नियंत्रकों के अनुप्रयोग से भंग किया जा सकता है। इस श्रेणी में जिब्बरेलिन, इथाइलिन, क्लोरोहाइड्रीन तथा थायोयूरिया प्रमुख हैं।

वसन्तीकरण
(Vernalization)

अधिकांश पादपों में पुष्पन की क्रिया पर उचित दीप्तिकालों के अतिरिक्त तापक्रम का भी गहन प्रभाव पड़ता है। पौधों के तापक्रम के प्रति व्यवहार का सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन **लायसैन्को** (Lysenko, 1928) ने चावल की दो किस्मों शीत किस्म एवं वसन्त किस्म (Winter and Spring variety) पर किया ।

एकवर्षी पादपों में पुष्पन पर प्रकाश का मुख्य प्रभाव पड़ता है तथा तापमान का प्रभाव द्वितीयक होता है। द्विवर्षी पादपों में स्थिति भिन्न होती है। इनमें प्रथम वर्ष में केवल कायिक वृद्धि होती है तथा पुष्पन की क्रिया द्वितीय वर्ष में सम्पन्न होती है, किन्तु पुष्पन पूर्व इन्हें शीत ऋतु के निम्न तापक्रम में उद्भासित (Expose) अथवा उपचारित होना आवश्यक होता है। शीत प्रभाव के अभाव में इन द्विवर्षी पौधों में जनन प्रावस्था प्रारम्भ नहीं होती है तथा ये कायिक अवस्था में ही बने रहते हैं। शीत कालिक किस्मों में कम तापमान की आवश्यकता को कृत्रिम शीत उपचार द्वारा पूरा किया जा सकता है जिससे इनमें ग्रीष्म ऋतु में पुष्पन कराया जा सके। पौधों में शीत उपचार द्वारा पुष्पन प्रेरण की यह क्रिया **वसन्तीकरण (Vernalization)** कहलाती है। **कोअर्ड** (Choird, 1960) के अनुसार शीत उपचारों द्वारा पुष्पन की योग्यता के उपार्जन को वसन्तीकरण कहते है। वसन्तीकरण की तकनीक अत्यन्त सरल है। इसमें सर्वप्रथम बीजों को भिगोकर अंकुरण के लिए छोड़ दिया जाता है इसके पश्चात अंकुरित बीजों को कम तापमान पर (O^0C से 5^0C)

उपचारित किया जाता है। शीत उपचार का समय जाति एवं किस्म के अनुसार भिन्न होता है। यह कुछ घण्टों से लेकर कुछ सप्ताह तक हो सकता है।

शीत उपचार से पत्तियों में हार्मोन के समान कुछ ऐसे पदार्थ बनते हैं जो वसन्तीकरण को नियन्त्रित करते है। **मेल्चर्स** (Melchers, 1939) ने इस पदार्थ का नाम **वर्नेलिन** (Vernalin) दिया। **लैंग** (Lanng,1952) के अनुसार वर्नेलिन पुष्पन क्रिया को प्रारम्भ करने वाले हार्मोन फ्लोरीजन (Florigen) का पूर्वगामी है।

शीतकालिक पादप $\xrightarrow{\text{कम तापमान}}$ वर्नेलिन $\xrightarrow{\text{प्रेरक दीप्तिकाल}}$ फ्लोरीजन $\rightarrow$ पुष्पन

वर्नेलिवन व फ्लोरीजन दोनों काल्पनिक हार्मोन हैं जिनका अभी तक पृथक्करण संभव नहीं हुआ है। पादप के भ्रूण तथा विभज्योतक शीत उपचार के ग्राही अंग है।

यदि वसन्तीकृत बीजों या पौधों को अधिक तापक्रम सें उपचारित किया जाता है तो वसन्तीकरण का प्रभाव नष्ट हो जाता है इसे **विवसन्तीकरण** (Devernalization) कहते हैं।

जीर्णता

(Senescence)

कोई भी जीव अमर नहीं है। पृथ्वी पर उपस्थित किसी भी जीव का एक समय जन्म होता है तथा कुछ काल व्यतीत होने के पश्चात उसकी मृत्यु हो जाती है। जीव के जन्म एवं मृत्यु के मध्य की अवधि उसका जीवनकाल कहलाता है। सभी सजीवों के जीवन काल में परिपक्वन अवस्था प्राप्त करने के पश्चात इस प्रकार की अवनतकारी क्रियाऐं (Deteriorative process) होती है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। अत: किसी भी जीव की परिपक्व अवस्था से लेकर मृत्यु तक के काल को **जीर्णता** कहते हैं। इस काल के दौरान जीव कमजोर हो जाता है तथा उसकी कार्य क्षमता भी कम हो जाती है। उपापचयी पदार्थ संग्रहित हो जाते है तथा शुष्क भार में कमी आ जाती है। **लियोपोल्ड** (A.C. Leopold, 1961) ने पादपों में चार प्रकार की जीर्णता का वर्णन किया है –

(1) सम्पूर्ण पादप जीर्णता :– बहुत से एक वर्षीय पादप जैसे गेहूँ, चना, टमाटर इत्यादि में फल निर्माण के पश्चात सम्पूर्ण पादप पीला होकर अन्तत: मृत हो जाते हैं।

(2) शीर्ष अथवा प्ररोह जीर्णता :– इस प्रकार की जीर्णता में पादप का ऊपरीभूमिक भाग प्रतिवर्ष मृत हो जाता है तथा भूमिगत तना एवं जड़ें जीवित रहती हैं। अगले वर्ष भूमिगत भाग में कलिकाएं बनती है जो वायव भाग का पुन: निर्माण करती हैं।

(3) पर्णपाती जीर्णता :– बहुत से पादपों में पतझड़ में पत्तियाँ मृत होकर झड़ जाती हैं लेकिन मूल तथा स्तम्भ जीवित रहते हैं। अनुकूल परिस्थितियाँ आने पर पत्तियाँ पुन: विकासित हो जाती हैं।

(4) क्रमिक जीर्णता :– अधिकतर वार्षिक पादपों में सामान्य परिवर्धन में पुरानी पत्तियाँ पहले जीर्ण होकर मृत हो जाती हैं। इसके पश्चात अन्य पत्तियाँ, तना, एवं जड़े जीर्ण होकर मृत होती है इसे क्रमिक जीर्णता कहते हैं।

वृद्धि हर्मोन ABA तथा इथाइलिन जीर्णता को प्रेरित करते हैं। ABA प्रमुख रूप से पर्ण जीर्णता तथा इथाइलिन फलों में जीर्णता को तीव्र करते है। ऑक्सिन, जिब्बरेलिन एवं साइटोकाइनिन अधिकतर मामलों में जीर्णता को स्थगित करने में सक्षम होते हैं।

विलगन

(Abscission)

पादपों में पत्तियों, पुष्पों एवं फलों का मातृ पादप से पृथक होकर गिरना **विलगन** कहलाता है। विलगन एक जैविक क्रिया है जो इन पादप अंगों के आधारीय भाग की कोशिकाओं में परिवर्तन के परिणामस्वरूप होती है। इन स्थलों पर एक निश्चित क्षेत्र की कोशिकाओं की मध्य पटलिकाओं एवं बाह्य भित्तियों का पेक्टीनेज एवं सैल्यूलेज एन्जाइमों द्वारा पाचन हो जाता है जिससे मध्य पटलिकाओं एवं भित्तियों के टूटने से कोशिकाएं एक दूसरे से पृथक होने लगती है। इस क्षेत्र के ऊतक मुलायम एवं कमजोर हो जाते हैं तथा इस स्थान पर एक विलगन पर्त का निर्माण हो जाता है। विलगन पर्त से कुछ नीचे की कोशिकाएं विभाजनशील होकर कार्क कोशिकाओं का निर्माण करती हैं जो कि एक रक्षात्मक स्तर अथवा विलगन क्षेत्र का निर्माण है। तेज हवा के झोंकों के अथवा वर्षा के परिणामस्परूप ये पादप अंग विलगन पर्त वाले स्थान से टूटकर पादप से पृथक होकर गिर जाते हैं।

विलगन हार्मोन सन्तुलन में परिवर्तन के कारण होता है। इस प्रक्रिया में एब्सिसिक अम्ल महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. सजीवों के परिमाण में स्थायी एवं अनुत्क्रमणीय परिवर्तन को वृद्धि कहते हैं।
2. वृद्धि आनुवंशिकीय, वातावरणीय तथा आन्तरिक कारकों द्वारा प्रभावित होती है।
3. पादपों में वृद्धि सामान्यत: उनके शीर्षस्थ भागों में होती है।
4. पादपों की वृद्धि एवं समय का ग्राफ सिग्मॉइड वक्र के रूप में प्राप्त होता है।
5. वृद्धि का मापन ऑक्जैनोमीटर द्वारा किया जाता है।
6. ऑक्सिन, जिब्बरेलिन, साइटोकाइनिन, इथाइलिन एवं

एब्सिसिक अम्ल प्रमुख वृद्धि नियन्त्रक हार्मोन हैं।

7. पादप हार्मोन सामान्यत: पादपों के शीर्ष भागों में बनते है तथा फ्लोएम द्वारा सम्पूर्ण शरीर में वितरित होते है।
8. एब्सिसिक अम्ल वृद्धि निरोधक हार्मोन है।
9. जीर्णता सजीवों का लाक्षणिक गुण है जो परिपक्व अवस्था प्राप्त करने के बाद प्रदर्शित होता है।
10. अनुकूल प्रकाश अवधि जो पादपों में पुष्पन क्रिया को प्रेरित करती है उसे दीप्तिकाल कहते है एवं यह घटना दीप्तिकालिता कहलाती है।
11. शीत उपचार द्वारा पादपों में पुष्पन की योग्यता अर्जन करने को वसन्तीकरण कहते हैं।
12. बीजों के अंकुरण के अस्थायी निलम्बन को प्रसुप्ति कहा जाता है जिसको वसन्तीकरण या हार्मोन के अनुप्रयोग से कम या ज्यादा किया जा सकता है।
13. पादपों की पत्तियों में एक प्रकाश संवेदी वर्णक फाइटोक्रोम पाया जाता है जो प्रकाश के प्रभाव से पादपों में पुष्पन क्रिया को प्रेरित करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुवैकल्पिक प्रश्न :

1. सबसे पहले जिस पादप हार्मोन की खोज हुई, वह है
   (अ) ऑक्सिन (ब) जिब्बरेलिन
   (स) इथाइलिन (द) साइटोकाइनिन
2. पत्ता गोभी के रोजेट पादप को लम्बे प्रोह में परिवर्तित करने के लिए छिड़कना होगा
   (अ) IAA (ब) ABA
   (स) GA (द) इथाइलिन
3. गैसीय अवस्था में मिलने वाला हार्मोन है –
   (अ) ऑक्सिन (ब) जिब्बरेलिन
   (स) साइटोकाइनिन (द) इथाइलिन
4. पतझड़ के समय पौधों में कौनसा हार्मोन सबसे अधिक सक्रिय होता है –
   (अ) IAA (ब) ABA
   (स) GA (द) उपरोक्त सभी
5. शीर्षस्थ प्रभाविता पाई जाती है –
   (अ) ऑक्सिन के कारण
   (ब) जिब्बरेलिन के कारण
   (स) साइटोइनिन के कारण
   (द) इथाइलिन के कारण
6. निम्न में से किस पादप हार्मोन को अभी तक पृथक नहीं किया गया है
   (अ) ऑक्सिन (ब) फ्लोरिजन
   (स) साइटोकाइनिन (द) जिब्बरेलिन
7. मूल शीर्ष की वृद्धि को सदंमित करने वाला हार्मोन है –
   (अ) साइटोकाइनिन (ब) ऑक्सिन
   (स) जिब्बरेलिन (द) उपरोक्त सभी
8. खेतों में द्विबीजपत्री खरपतवार को नियंत्रित करने में प्रयोग किया जाता है।
   (अ) IAA (ब) GA
   (स) IBA (द) 2-4D
9. पादपों में किस वृद्धि नियन्त्रक को स्ट्रेस हार्मोन कहा जाता है
   (अ) IAA (ब) ABA
   (स) IBA (द) NAA
10. फाइटोक्रोम की खोज की थी –द्वारा
   (अ) बोर्थविक एवं हेण्डरिक्स
   (ब) बॉयसन – जैनसन
   (स) गार्नर – एलार्ड
   (द) डार्विन – वेन्ट

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. समग्र वृद्धिकाल से आप क्या समझते है?
2. कौनसा पदार्थ फलों के कृत्रिम परिपक्वन के लिए प्रयुक्त किया जाता है?
3. शीतन उपचार के अनुकूल तापक्रम कौनसा है?
4. जियाटिन क्या है?
5. वर्नेलिन क्या होता है?
6. जीर्णता एवं रन्ध्रों को बन्द करने वाले हार्मोन का नाम बताइये।
7. काइनेटिन का रासायनिक नाम क्या है?
8. दो संश्लिष्ट ऑक्सिन के नाम बताइये।
9. अनिषेकफलन को किस हार्मोन द्वारा प्रेरित किया जा सकता है?
10. प्रसुप्ति किसे कहते हैं?
11. फोटोब्लास्टिक बीज किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1. सिग्माइड वृद्धि चाप क्या होता है?
2. मुक्त एवं बंधित ऑक्सिन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।
3. बैकने रोग क्या होता है ?
4. शीर्ष प्रभाविता से आप क्या समझते हैं?
5. बोल्टिंग प्रभाव क्या है ?
6. अंकुरण के अन्त में नवोद्भिद् के शुष्क भार में कमी क्यों आती है ?
7. मेहन्दी की झाड़ियों के शीर्ष भाग की माली कंटिग क्यों करता रहता है?
8. फाइटोक्रोम क्या है एवं इसका क्या महत्व है?
9. एब्सिसिक अम्ल को तनाव हार्मोन क्यों कहते हैं।
10. संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए

    (1) प्रसुप्ति (2) उत्तरपक्वनकाल (3) दीप्तिकालिता

निबन्धात्मक प्रश्न :

1. निम्न पर टिप्पणी लिखिए

    (अ) वृद्धि की प्रावस्थाएं (ब) वृद्धि गतिकी
2. वृद्धि का मापन किस प्रकार किया जाता है ? वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
3. ऑक्सिन क्या होता है ? पादप वृद्धि पर इसके कार्यिकीय प्रभावों की विवेचना कीजिए।
4. ऑक्सिन की खोज के सम्बन्ध में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा किये गये प्रयोगों का वर्णन कीजिए।
5. प्रसुप्ति किसे कहते है ? प्रसुप्ति के कारण और उसको समाप्त करने के उपायों का वर्णन कीजिए।
6. निम्न विषयों पर निबन्ध लिखिए –

    (i) जिब्बरेलिन एवं साइटोकाइनिन

    (ii) वृद्धि निरोधक पदार्थ

    (iii) दीप्तिकालिता

    (iv) जीर्णता एवं विलगन

    (v) वसन्तीकरण

उत्तरमाला – 1. (अ) 2. (स) 3. (द) 4. (ब) 5. (अ) 6. (ब) 7. (ब) 8. (द) 9. (ब) 10. (अ)।

❑❑❑